P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-3* November- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

मानव विकास में प्रागैतिहासिक शैल–चित्रों की भूमिका

राजेन्द्र प्रसाद
सहायक आचार्य,
चित्रकला विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर

सारांश

मानव जाति के इतिहास का आरम्भ संघर्षों तथा युद्धों से हुआ है। आदिम मनुष्य की क्रूरताओं तथा युद्ध–लिप्साओं को कम करने और उनमें सभ्यता तथा सद्भाव की उत्कण्ठा का स्फूरण करने में कला के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। विचारों का आदान–प्रदान मनुष्य की आदिम प्रवृत्ति रही है भाषा की इस कमी को कमोबेश पूरा किया कला ने। चित्रण की प्रवृत्ति मनुष्य में उस समय से है, जब वह वनौकस था। निदान संसार भर में आदिम मनुष्य के वनवासी गुहागृह मनुष्य द्वारा चित्रित मिलते हैं। यथार्थ में प्रागैतिहासिक चित्रों में मानव के क्रमिक विकास के दर्शन होते है। ईसा से 20,000 से 10,000 वर्ष का समय प्रागैतिहासिक कहा जाता है। प्रागैतिहासिक कालीन शैल–चित्र हजारों सदियों से कितने देश, काल और जातियों के उत्कर्ष, अवनति और संघर्षों का इतिहास अपने में समाहित किये हुए ज्यों के त्यों अपने विविध आयामों के माध्यम से मानव के क्रमिक विकास की व्याख्या करते हैं। श्री जगदीश चन्द्र गुप्त के अनुसार – ''प्रागैतिहासिक मानव के मनोजगत् का ज्ञान प्रतीकों से भी कहीं अधिक निश्चयात्मकता, विशदता एवं सूक्ष्मता के साथ, शिला–चित्रों द्वारा प्राप्त होता है और इस दृष्टि से मैं उनको अद्वितीय महत्त्व देता हूँ। निष्कर्षतः प्रागैतिहासिक शैल–चित्रों में मानव विकास की कड़ी को जोड़ने में अपनी महत्ती भूमिका निर्वहन की जिसके फलस्वरूप आदिम एवं प्रागैतिहासिक मानव के क्रिया–कलाप, रहन–सहन, भोजन एवं वनौकस जीवन की पर्तों को समझने में सहायता मिली।

मुख्य शब्द : युद्ध–लिप्सा, वनौकस, प्रागैतिहासिक, क्रमिक विकास, शैल–चित्र, गुहा–गृह।

प्रस्तावना

मानव जाति के इतिहास का आरम्भ संघर्षों तथा युद्धों से हुआ है। साहित्य के प्रथम काव्यों में, जो कि स्वयं में इतिहास के महत्वपूर्ण तथ्यों को भी समेटे हुए हैं, इसी वीर–भावना का समावेश हुआ मिलता है। आदिम मनुष्य की क्रुरताओं तथा युद्ध–लिप्साओं को कम करने और उनमें सभ्यता तथा सद्भाव की उत्कण्ठा का स्फूरण करने में कला के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। कला की जिज्ञासा ने मनुष्य को मनुष्य के निकट लाने और उनमें पारस्परिक सामंजस्य स्थापित करने का कार्य किया। यही कारण है कि आधुनिक इतिहासविदों एवं पुरातत्वों ने मानव–सभ्यता की खोज के लिए कला को महत्वपूर्ण साधन के रूप में ग्रहण किया है।

आदिम मानव–सभ्यता में कला की उत्प्रेरणा का उदय कब और कैसे हुआ, इसका इतिहास यद्यपि पर्याप्त अस्पष्ट एवं बिखरे हुए रूप में उपलब्ध होता है, तथापि विद्वानों की धारणा है कि मनुष्य ने इस पृथ्वी में जिस अतीत वेला में नयनोन्मीलन किया, तभी से कला के प्रति उसकी जिज्ञासा स्वाभाविक रूप में प्रस्फुटित हुई। उसके इस कलानुराग के विभिन्न उपादान प्रागैतिहासिक सभ्यता के अवशेषों में उपलब्ध हुए हैं। ये कला–उपादान चट्टानों, नदी–तटों और गुफाओं से प्राप्त हुए हैं।[1]

विचारों का आदान–प्रदान मनुष्य की आदिम प्रवृत्ति रही है। इस प्रवृत्ति के फलस्वरूप मनुष्य की भाषा का जन्म हुआ। परस्पर बोलकर या बातचीत करके विचारों का आदान–प्रदान किया जा सकता है। परन्तु एक क्षेत्र अथवा देश की भाषा दूसरे क्षेत्र अथवा देश की भाषा से जब भिन्न होती है तो वे परस्पर विचारों का आदान–प्रदान नहीं कर पाते हैं। ऐसी स्थिति में भाषा के ज्ञान के बावजूद मनुष्य के विचारों का सार्वभौमिक आदान–प्रदान संभव नहीं। भाषा की इस कमी को कमोवेश पूरा किया कला ने। मनुष्य ने अपने मन में उठने वाले विचारों को कला के माध्यम से जो साकार या मूर्त रूप प्रदान किया, वह देश–काल की सभी सीमाओं को लाँघकर सबके लिए समान रूप से

बुद्धि–ग्राह्य हो गया। चित्रकला अथवा मूर्तिकला में अंकित फूल–पत्ते, पेड़–पौधे, पशु–पक्षी, नदी–सरोवर, सूर्य–चन्द्र अथवा पृथ्वी–आकाश संसार के सभी मनुष्यों को समान रूप से ज्ञात हो जाते हैं। इसी प्रकार कलाकृति के माध्यम से दर्शक मानव–जगत के नाना प्रभाव के भावों यथा – हास्य, उल्लास, क्रोध, दुःख, दीनता अथवा विवशता से स्वतः परिचित हो जाता है। अस्तु विचारों के आदान–प्रदान के लिए जहाँ मनुष्य की भाषा का प्रभाव–क्षेत्र सीमित है, वहाँ मनुष्य की कला का क्षेत्र विस्तृत और सार्वभौम है।[2]

साहित्यावलोकन

राय कृष्णदास, भारत की चित्रकला, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, 2023 वि.सं. पुस्तक में शैलचित्रों को विषय, शैली एवं सामग्री की दृष्टि से उस समय के मानव–जीवन के प्रतीक उल्लिखित किया है। हर्बर्ट रीड, 'द आर्ट एण्ड सोसाइटी', फेबर एण्ड फेबर यूनिवर्सिटी ऑफ मिशिगन, 1945. उक्त पुस्तक में रवीन्द्रनाथ टैगोर और हर्बर्ट रीड की दृष्टि मानवीय यथार्थ को अधिक गहराई से देखती है। 'ऑन दि ट्रैक ऑफ प्रिहिस्टोरिक मैन' के 'एपिलॉग' में हर्बर्ट कुह ने धर्म, दर्शन और कला तीनों के उद्भव को प्रागैतिहासिक मानव के आंतरिक जीवन से साबद्ध बताया है। जगदीश गुप्त, प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला, पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, नवम्बर 1985. संदर्भित पुस्तक में बताया गया है कि मनुष्य के भीतर सृजन शक्ति कितनी पुरातन और कितनी गहराई तक व्याप्त है। इसका जैसा ज्वलंत प्रमाण शिला–चित्रों से प्राप्त होता है वैसा पाषाण शास्त्र आदि अन्य पुरातात्विक उपकरणों से कदापि संभव नहीं। गिर्राज किशोर अग्रवाल, कला और कलम, अशोक प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़, 1999. सम्बन्धित पुस्तक में मानव ढाँचों, शिलालेखों एवं शैलचित्रों के प्रमाण के माध्यम से मानव के क्रमिक विकास की जानकारी मिलती है। वाचस्पति गैरोला, भारतीय संस्कृति और कला, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2006. उक्त पुस्तक में मानव जाति का इतिहास, संघर्ष, कला की उत्प्रेरणा का उदय तथा प्रागैतिहासिक सभ्यता के अवशेषों का जिक्र किया गया है।

डॉ. जय नारायण पाण्डेय, पुरातत्त्व विमर्श, प्राच्य विद्या संस्थान, इलाहाबाद, 2017. सम्बन्धित पुस्तक में प्रागैतिहासिक कला का प्रयोजन एवं चित्रों का निर्माण आदि ज्वलंत विषयों पर प्रकाश डाला है। उपिन्दर सिंह, प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास, पियर्सन इंडिया एजूकेशन सर्विसेज प्रा.लि., नोएडा (उ.प्र.), 2018. प्रस्तुत पुस्तक में आदि मानव समुदायों, शैल–चित्र एवं वर्गीकरण आदि मुद्दों पर गंभीरता से विचार किया है।

अध्ययन का उद्देश्य

आदिम एवं प्रागैतिहासिक मानव के क्रिया कलाप, रहन–सहन, भोजन एवं वनौकस जीवन के रहस्य को सुलझाने में शैल–चित्रों की महती भूमिका रही है जो मानव के क्रमिक विकास के महत्वपूर्ण दस्तावेज हैं। मेरा मानना है कि शैल–चित्रों की उपादेयता चित्रकला विद्यार्थी, शोधार्थी, कलाकार एवं विद्वतजनों के लिये लूंठी–अलूंठी है। बहरहाल आमजन एवं जन–जन तक इसका विस्तार हो, तभी इसकी सार्थकता है।

प्रागैतिहासिक काल से अभिप्राय उस युग से है जिसके प्रमाण सम्पूर्ण विश्व में यत्र–तत्र मिलते हैं। ईसा से 20,000 से 10,000 वर्ष का समय प्रागैतिहासिक कहा जाता है। इस युग का प्रमाण जीवाश्मों से मिलता है।

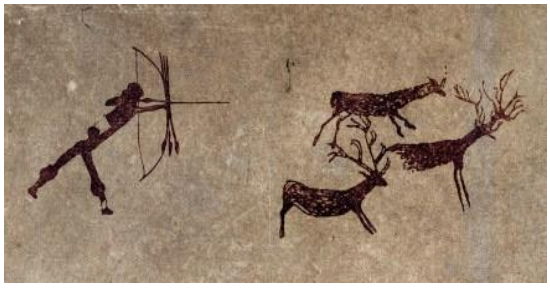

मानव ढाँचों, शिलालेखों एवं शिला–चित्रों के प्रमाणों ने जीवजगत के इतिहास को करोड़ों वर्षों तक पहुँचा किया है। प्रागैतिहासिक कला मिश्र–क्रीट, सुमेर, सिंधु असीरिया बेबीलोनिया, उत्तरी–दक्षिणी अमेरिका, पश्चिमी अफ्रीका, श्रीलंका एवं मेलानेशिया आदि स्थानों में पायी गयी है। भारत वर्ष में तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, छोटा नागपुर, उड़ीसा, होशंगाबाद, पंजाब, उत्तर प्रदेश एवं नर्मदा उपत्यका में प्रागैतिहासिक हथियार, वस्त्र, चित्र और उपयोग में आने वाले भाँति–भाँति के बर्तन मिले हैं। ये हजारों सदियों से कितने देश काल और जातियों के उत्कर्ष, अवनति और संघर्षों का इतिहास अपने में समाहित किये हुए ज्यों के त्यों अपने विविध आयामों के माध्यम से मानव के क्रमिक विकास की व्याख्याता करते हैं।[3]

चित्रण की प्रवृत्ति मनुष्य में उस समय से है जब वह वनौकस था। अपना सांस्कृतिक विकास करने के लिए उसने संस्कृति के जिन अंगों से श्रीगणेश किया था, उनमें चित्रकला भी एक थी। निदान संसार भर में आदिम मनुष्य के वनवासी गुहा–गृह मनुष्य द्वारा चित्रित मिलते हैं। इनका सिलसिला उस समय से आया है जब वह धातुओं का व्यवहार तक न जानता था और कड़े पत्थरों के अनगढ़ शस्त्रों और औजारों से काम लेता था। ये चित्र विषय, शैली तथा सामग्री की दृष्टि से उस समय के मानव–जीवन के प्रतीक हैं। अर्थात् इनके विषय मुख्यतः जानवर, आखेट करते हुए मनुष्य, आपस में युद्ध करते हुए मनुष्य एवं पूजनीय आकृतियाँ हैं। जिनकी शैली आदिम एवं रचना सामग्री धातु–रंग, खनिज रंग (मुख्यतः गेरू, रामरज, हिरौंजी) है तथा इनके स्थान उक्त गुहा–गृह एवं खुली चट्टानें हैं।[4]

चित्रकला का उदभव, उन्नति व विकास मानव विकास के साथ प्रारम्भ से ही जुड़ा हुआ है। मनुष्य के भीतर की सृजन शक्ति कितना पुरातन एवं कितनी गहराई तक व्याप्त है इसका ज्वलंत प्रमाण प्रागैतिहासिक शिला–चित्र है। अज्ञात काल की संस्कृति के आन्तरिक स्वरूप का परिचय लिपि के अभाव में केवल कलाकृतियों के द्वारा ही हो पाया है जो इन शिलाश्रयों में अंकित है। इन चित्रों के द्वारा गुहावासी मानव की अन्तः चेतना का ज्ञान तो होता है साथ ही इसकी संघर्षपूर्ण जीवन प्रक्रिया तथा विषमतम परिस्थितियों में भी व्यक्त होने वाला

मौलिक उद्भावनाशक्ति एवं सौन्दर्य बोध का भी प्रमाण मिलता है।[5]

यथार्थ में प्रागैतिहासिक चित्रों में मानव के क्रमिक विकास के दर्शन होते हैं। आदिम अवस्था में मानव प्रकृति के अंचल में रहता था, जो कुछ भी उसे अपने आस–पास मिला, उसी का प्रयोग उसने चित्रों के संदर्भ में किया। उसने खनिज पदार्थ–गेरू, रामरज, कोयला एवं खनिज आदि को ही अपने रेखांकन एवं चित्रण का आधार बनाया तथा पत्थर की चट्टानें ही उनका चित्रतल थी। खड़ी, तिरछी एवं आयताकार रेखाओं के माध्यम से उसने अपने चित्रण को रूप प्रदान किया। प्रागैतिहासिक चित्रों में कलात्मक पूर्णता, अनुभूति एवं भावों का सरल रेखा द्वारा प्रदर्शन, पशु–पक्षियों एवं मानव जीवन के नाना रूपों का अंकन प्रागैतिहासिक चित्रकला का मूलाधार है। प्रागैतिहासिक चित्रों का महत्त्व यूँ भी अधिक है कि बहुत से आधुनिक चित्रकारों ने प्रयोग की नवीनता के लिए इन चित्रों से ही प्रेरणा ग्रहण की है।[6]

श्री जगदीश गुप्त के अनुसार, ''प्रागैतिहासिक मानव के मनोजगत् का ज्ञान प्रतीकों से भी कहीं अधिक निश्चयात्मकता, विशदता एवं सूक्ष्मता के साथ, शिला–चित्रों द्वारा प्राप्त होता है और इस दृष्टि से मैं उनको अद्वितीय महत्त्व देता हूँ। पुरातनता के प्रासाद में मुझे वे उन अगणित रूपायित गवाक्षों की तरह प्रतीत होते हैं, जिनके माध्यम से अतीत को मानसिक धरातल पर संस्पादित और सजीव रूप में प्रत्यक्ष किया जा सकता है जैसा किसी अन्य माध्यम में संभव नहीं है। कलाकार के नाते मुझे प्रागैतिहासिक चित्र एक ऐसा जीवन्त अनुभव प्रदान करते हैं, जो उनमें निहित अप्रतिम कला–चेतना एवं रचना–शक्ति के कारण केवल अतीत का ही बोध नहीं कराता वरन् उनके अस्तित्व को सीधे आधुनिक युग के कला–संदर्भ से जोड़ देता है।''

प्रागैतिहासिक चित्रों का महत्त्व इसी से विधित हो जाता है कि यूरोप के प्रागैतिहास को मुख्यता उन्हीं की शोध के आधार पर लगभग तीस–चालीस सहस्राब्दियों तक का गौरवपूर्ण परिविस्तार प्राप्त हुआ और कला के क्षेत्र में भी अतुल सांस्कृतिक प्रतिष्ठा उपलब्ध हुई। मनुष्य के भीतर सृजन–शक्ति कितनी पुरातन और कितनी गहराई तक व्याप्त है, इसका जैसा ज्वलंत प्रमाण शिला–चित्रों से प्राप्त होता है, वैसा पाषाणास्त्र आदि अन्य पुरातात्विक उपकरणों से कदापि संभव नहीं है। अज्ञात–काल की संस्कृति के आभ्यंतरिक स्वरूप का उद्घाटन लिपि के अभाव में एकमात्र कलाकृतियों के द्वारा ही हो पाता है जिनमें शिला–चित्रों का स्थान सर्वप्रमुख है।[7] सामाजिक विकास की वर्तमान स्थिति तक आते–आते मानव–मन के बहुत से रहस्यमय एवं गूढ़ सत्य प्रच्छन्न हो गए हैं। अथवा जिनका आभास आज की जटिल जीवन–प्रणाली में कठिनता से हो पाता है, उनकी ओर भी प्रागैतिहासिक चित्रकला सीधा ध्यान आकृष्ट करती है। इस प्रकार मानवीय चेतन्य को एक अत्यन्त विस्तृत संदर्भ प्राप्त होता है तथा उसकी आन्तरिक एकता प्रमाणित होती है। मानव विकास के विविध स्तर लक्षित होते हैं जिनसे आत्मीयता स्थापित होने पर सांस्कृतिक समृद्धि और सम्पूर्णता की अनुभूति होती है।[8] कला का स्थान मानव विकास में किसी भी प्रकार दर्शन और विज्ञान से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। कलाकार के 'धर्म' की चर्चा करते हुए विश्वकवि रविन्द्रनाथ ठाकुर ने कला की महत्ता को यथोचित रूप में व्यक्त किया है। पाश्चात्य कला–विशेषज्ञ हर्बर्ट रीड भी कला को अभिव्यक्ति के माध्यम से ज्ञान की दृष्टि से दर्शन और विज्ञान से अधिक प्रामाणिक और मूल्यवान मानते हैं। इसमें संदेह नहीं कि रविन्द्र और रीड की दृष्टि मानवीय यथार्थ को अधिक गहराई से देखती है। 'आन दि ट्रेक ऑफ प्रिहिस्टॉरिक मैन' के 'एपिलॉग' में हर्बर्ट कुह्न ने धर्म, दर्शन और कला तीनों के उद्भव को, प्रागैतिहासिक मानव के आन्तरिक जीवन से साबद्ध बताया है।[9]

प्रागैतिहासिक चित्रों का मूल्यांकन करते हुए गिर्राज किशोर अग्रवाल लिखते हैं कि, आदिम कला के कुछ चित्र अंधेरे स्थानों पर प्राप्त हुए हैं। इससे कुछ विचारकों ने यह अनुमान लगाया है कि धार्मिक विवशता एवं जादू–टोना का भी चित्रकला के सृजन में अवश्य ही योगदान रहा है। आदिम मानव ने देवताओं को रिझाने के लिए उनकी वन्दना की होगी जो वस्तुएँ उन्हें प्रिय लगी होगी उन्हें उपवास के समय में दीवारों पर चित्रित किया होगा। मानव के विकास के साथ–साथ उनकी प्रवृत्तियों का भी विकास हुआ होगा। भारत में प्राप्त पहला शैल–चित्र 1867–68 में कैमूर पहाड़ियों में स्थित सोहागी घाट की खोज भारतीय पुरातात्त्विक संरक्षण के एक उप–सर्वेक्षक ए.सी.एल. कार्यालय के द्वारा की गई। आज भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न हिस्सों से लगभग 150 मध्यपाषाणकालीन युगीन शैलचित्रों का प्रतिवेदन उपलब्ध है। मध्य भारत में इसका विशेष संक्रमण देखा जा सकता है। दरअसल, मध्यपाषाण काल के समुदायों को समझने में इन शैलचित्रों का महत्त्वपूर्ण योगदान है तथा इनके संदर्भों में प्रत्येक स्थान का दूसरे स्थान से साम्य दर्शाया जाता है। भीमबेटका के मध्यपाषाण युगीन शैलचित्रों में किशोर और वृद्ध सभी आयु के पुरूष और महिलाओं का चित्रण हुआ है। पुरूषों के चित्र दीया सलाई के काठी की तरह दिखते हैं। जबकि अपेक्षाकृत महिलाओं का उभारयुक्त चित्र मिलता है। कुछ पुरूष शायद पत्तों, जानवर के खाल या वृक्षों के छाल पहने हुए हैं। पुरूषों के बाल ज्यादातर खुले है और महिलाओं के बंधे हुए। कुछ पुरूषाकृतियों के चित्र ज्यामितिय औजारों से अलंकृत है, जो शायद सत्ताधारी लोग होंगे। यहाँ चित्रित मुखौटे पहने हुए नर्तक किसी प्रकार के कर्मकाण्डों के विशेषज्ञ प्रतीत होते हैं, हथेली, मुक्के और अंगुलियों की छाप भी देखे जा सकते हैं, जिनका आज भी प्रचलन हैं।[10]

भीमबेटका के शैल–चित्रों में लिंग के आधार पर किसी प्रकार का श्रम विभाजन प्रतिबिम्बित भी होता है, जहाँ पुरुष को आखेट दृश्यों में दिखलाया जाता है, वहीं महिलाओं को झुण्ड में भोजन करते हुए अथवा चक्की में अनाज पीसते हुए दिखाया गया है। उक्त शैल–चित्रों की दूसरी ध्यान देने योग्य अनुपस्थिति मृद्भाण्डों के अंकन का है। पानी के संचार के लिए चमेड़ की थैली या सुखाए गए कोहड़ों का प्रयोग होता था। कुछ दृश्य में लोगों को फल और मधु संग्रहित करते हुए दिखाया गया है। कुछ दृश्यों में कामकला का भी प्रदर्शन है। वैसे प्रागैतिहासिक

शैल–चित्र भारत के अन्य बहुत से हिस्सों में मिलते हैं। पूर्वी भारत में, पश्चिमी उड़ीसा के सुन्दरगढ़ और सम्बलपुर जिलों से 55 शैल–चित्रों के स्थल मिले हैं। लेखामोड़ा नामक स्थान पर गुफा आश्रयणियों का समूह स्थित है। यहाँ पर स्थित एक गुफा से मध्यपाषाण से नवपाषाण तक के मानव विकास के प्रमाण मिले हैं।

उड़ीसा से प्राप्त खोज की विशेषता यह है कि यहाँ मानव निवास स्थलों से ही शैल–चित्रों की प्राप्ति हुई है। इसके अलावा यहाँ अमूर्त तस्वीरें अंकित हैं जिनमें प्रतिकात्मक तथा अलंकृत चित्रांकन की प्रधानता हैं। इससे संबंधित केरल से भी शैल–चित्र और उत्कीर्ण कलाकृतियाँ मिली हैं।[11]

प्रागैतिहासिक कला का उद्देश्य

प्रागैतिहासिक कला का क्या प्रयोजन था? उन लोगों ने चित्रों का निर्माण क्यों किया? विभिन्न विद्वानों ने इस कलात्मक अभिव्यक्ति के अलग–अलग कारण बतलाएँ हैं। यथा –शिकार से सम्बन्धित जादू–टोना–कतिपय विद्वानों के अनुसार प्रागैतिहासिक कला विशेषकर चित्रकला का उद्देश्य शिकार सम्बन्धी जादू–टोने (Hunting Magic) से था। इन चित्रों को मात्र कलात्मक अभिरूचि का परिचायक नहीं माना जा सकता है। ये चित्र अवश्य ही जादू–टोने जैसे विचारों के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आयें।

अभिमन्त्रण संस्कार

गुफा–कला उच्च पुरापाषाणिक लोगों के सौन्दर्य–बोध की अभिव्यक्ति मात्र नहीं है, क्योंकि बहुत से चित्र गुफाओं के अंधकारपूर्ण तथा दुर्गम भागों में निर्मित हैं। गुफाओं के इन हिस्सों में सहज ढंग से पहुँचना संभव नहीं। ऐसी दशा में यह संभावना प्रकट की गई है कि एक परिवार या एक समुदाय के नवयुवक सदस्यों के अभिमंत्रण संस्कार (Initiation Ceremony) के लिए इन चित्रों की रचना की गई होगी।

जनचिह्न अथवा टोटम

आदिम (Primitive) मानव जनों तथा समुदायों में किसी वास्तविक या काल्पनिक पशु–पक्षी आदि को आदिपूर्वज मानने की प्रथा मिलती है। इसको जनचिह्न अथवा टोटम (Totem) कहा जाता है। गुफा–चित्रों में विचित्र और काल्पनिक पशुओं का अंकन भी मिलता है, इसलिए कतिपय विद्वानों ने ऐसी संभावना प्रकट की है कि गुफाओं में चित्रित पशु 'टोटम पशु' (Totem Animal) हो सकते हैं।

उर्वरता अथवा प्रजनन सम्बन्धी अनुष्ठान

कतिपय विद्वान उच्च पुरापाषाणिक कला के पीछे उर्वरता अथवा प्रजनन सम्बन्धी अनुष्ठान (Fertility Cult) की भावना देखते हैं। विचित्र पशुओं, प्रतीकों तथा बिम्बो (Symbols) और विशेषकर मातृदेवी या 'वीनस' की प्रतिमाओं का निर्माण उर्वरता के अनुष्ठान के उद्देश्य से किया गया होगा। अनेक प्रतीकों को काम भावना (sex) का प्रतीक बतलाया गया है।[12]

निष्कर्ष

निष्कर्षतः प्रागैतिहासिक शैल–चित्रों ने मानव विकास की कड़ी को जोड़ने में अपनी महत्ती भूमिका निर्वहन की जिसके फलस्वरूप आदिम एवं प्रागैतिहासिक मानव के क्रिया कलाप, रहन–सहन, भोजन एवं वनोकस जीवन की पर्तों को समझने में सहायता मिली। जहाँ तक प्रागैतिहासिक चित्रों का सम्बन्ध है उनको जितना महत्त्व मिलना चाहिए उतना अभी भारत में प्राप्त नहीं हुआ है। भारत में कुछ अपवादों को छोड़कर अगणित चित्रित गुफाएँ प्रकृति के सहारे यों ही पड़ी हुई हैं। अतः आवश्यकता है कि आज निधि का संचयन कर गम्भीर अनुशीलन द्वारा सम्यक् निष्कर्ष तक पहुँचने की कल्पना कर सकते है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *गैरोला, वाचस्पति, भारतीय संस्कृति और कला, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2006 (तृ.सं.), पृष्ठ सं. 71.*
2. *श्रीवास्तव, ए.एल., भारतीय कला, किताब महल, इलाहाबाद, पृष्ठ सं. 3.*
3. *अग्रवाल, गिर्राज किशोर, कला और कलम, अशोक प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़, 1999, पृष्ठ सं. 17–18*
4. *कृष्णदास, राय, भारत की चित्रकला, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, 2023 वि.सं., पृष्ठ सं. 1.*
5. *उपाध्याय, डॉ. विद्यासागर, भारतीय कला की कहानी, दी स्टूडेण्ट्स बुक कम्पनी, जयपुर, 1996.*
6. *द्विवेदी, डॉ. प्रेम शंकर, भारतीय चित्रकला के विविध आयाम, कला प्रकाशन, वाराणसी, 2007, पृष्ठ सं. 16.*
7. *गुप्त, जगदीश, प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला, पब्लिशिंग हाऊस, पृष्ठ सं.*
8. *वही, पृष्ठ सं. 11.*
9. *रीड, हर्बर्ट, द आर्ट एण्ड सोसाइटी, फेबर एण्ड फेबर, द युनिवर्सिटी ऑफ मिशिगन, 1945, पृष्ठ सं. 18–19.*
10. *सिंह, उपिन्दर, प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास, पियर्सन इंडिया एजुकेशन सर्विसेज प्रा.लि., नोएडा (उ.प्र.), 2018, पृष्ठ सं. 92.*
11. *वही, पृष्ठ सं. 93.*
12. *पाण्डेय, डॉ. जय नारायण, पुरातत्त्व विमर्श, प्राच्य विद्या संस्थान, इलाहाबाद, 2017, पृष्ठ सं. 202–203.*